ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December- 2017
Innovation The Research Concept

अम्बेडकर विद्रोही नहीं, सुधारक थे

सुरेन्द्र डी. सोनी
प्रवक्ता,
इतिहास विभाग
राजकीय लोहिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
चूरू, राजस्थान

सारांश

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सम्बंध में आम धारणा यही है कि उन्होंने दलित वर्ग को उसका हक दिलाने के लिए व्यवस्था से जोरदार संघर्ष किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारत में दलितों के सबसे बड़े शुभ–चिंतक थे। उन्होंने संवैधानिक संस्थाओं में दलितों और अस्पृश्यों के लिए लिए स्थान आरक्षित कराने के लिए जमकर संघर्ष किया। तत्कालीन समाज मे दलितों की स्थिति देखकर वे बौद्ध भी हो गए, परंतु इसका इसका अर्थ यह नहीं है कि वे तंत्र के भीतर कोई तंत्र खड़ा करना चाहते थे। वास्तविकता तो यह है कि वे किसी भी हाल में समाज को खण्डित देखना नहीं चाहते थे। उनके कार्य–व्यवहार से स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य समाज में सुधार करना था, न कि उसके विरोध में कोई अराजक आंदोलन खड़ा करना। इस शोध–पत्र में यही प्रयास किया गया है कि समाज–विज्ञान के अध्येताओं के समक्ष डॉ. अम्बेडकर का विद्रोही नहीं, सुधारक रूप उद्घाटित हो।

मुख्य शब्द : लोक–संहिता, समरस समाज, अस्पृश्य, संवैधानिक सुरक्षा, आरक्षण, मध्यम मार्ग, विद्रोही, सुधारक, व्यवस्था–विरोधी आंदोलन, सनातनी, हरिजन, धर्म–शास्त्र, यज्ञोपवीत।

प्रस्तावना

इतिहास में किसी व्यक्ति का क्या स्थान हो, इस प्रश्न पर आम तौर पर प्रतिक्रियावादियों की यही राय रहती है कि इतिहास में व्यक्ति की नहीं, वर्ग की बात होनी चाहिए। भारतीय मनीषा में व्यक्ति का महत्व वर्ग से कम नहीं है। व्यक्ति है, तभी वर्ग है और वर्ग है, तभी व्यक्ति है। अतः इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि कोई व्यक्तिवादी है या वर्गवादी है। फर्क इस बात से पड़ता है कि कोई व्यक्ति या वर्ग समाज के सभी लोगों के अधिकतम हित–साधन की बात करता है या नहीं करता है। फ़र्क़ इस बात से पड़ता है कि कोई व्यक्ति या वर्ग समाज के सभी लोगों का हित–साधन किस माध्यम, हिंसा अथवा अहिंसा, से करना चाहता है।

यदि हम भारत के स्वतंत्रता–संग्राम का विचार करें, तो हमें ऐसे अनेक लोगों का स्मरण हो उठता है, जिन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात् हमारा भारत कैसा हो, इस सम्बंध में अपना–अपना दृष्टिकोण जनता के समक्ष रखा। किसी ने ऐसे समरस भारत की कल्पना की, जिसमें सभी धर्मों और वर्गों के नागरिक समान लोक–संहिता से बँधे हो। किसी ने नागरिकों के लिए अलग–अलग संहिता स्वीकृत किए जाने की वकालत की। कुछ लोग अलग राष्ट्र का स्वप्न भी देखते थे। ऐसे लोग अंग्रेजों के यहाँ से बेदख़ल होने तक अपने स्वप्न को जीवित रखने के लिए समाज में धर्म व जाति के आधार पर विभेद उत्पन्न करने लगे। कुछ ऐसे भी लोग थे, जो चाहते थे कि भारत की एकता और अखण्डता तो हर हाल में बनी रहे, लेकिन इसके दबे–कुचले नागरिकों को पर्याप्त संवैधानिक सुरक्षा भी मिले।

वह समय भी आया, जब भारत से अँगरेज़ों के जाने के शुभ लक्षण दिखाई देने लगे, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि तत्कालीन भारतीय समाज में जाति के आधार पर भेद–भाव किए जाने की अशुभ स्थिति भी बनी हुई थी। इस भेदभाव को मिटाने के लिए उस समय दो प्रमुख नेता, महात्मा गाँधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर, सक्रिय थे। दोनों ही नेताओं को भारत के इतिहास व संस्कृति की गहरी समझ थी। दोनों के ही समक्ष यह चुनौती थी कि वे, स्वयं को उस वर्ग से अलग करके, जिस वर्ग में उनका जन्म हुआ था, जनता में विश्वास जगाएँ। देश को विखण्डित करने वाले स्वप्नदर्शियों के लिए यह उचित अवसर था कि वे जाति व वर्ग को आधार बनाकर दोनों नेताओं को आमने–सामने खड़ा कर दें। उनकी योजना विफल हो गई, क्योंकि दोनों ने भारत की सनातन व समरस परम्परा का निर्वहन करते हुए समझौते का 'मध्यम

मार्ग' निकाल लिया। 1932 का पूना समझौता इसी सनातन भारतीयता का परिणाम था।

अध्ययन का उद्देश्य

डॉ. भीमराव अम्बेडकर, जिन्होंने स्वतंत्रता से ही पूर्व ही भारत में दबे–कुचले लोगों के लिए संवैधानिक सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु राजनीति में पर्याप्त हस्तक्षेप किया गया को एक विद्रोही की छवि से मुक्त करके एक सुधारक के रूप में प्रस्तुत करना।

'मध्यम–मार्ग' के प्रति आकर्षण और समाज–सुधार का आग्रह

'मध्यम मार्ग' के प्रति अम्बेडकर का आकर्षण बाद में उन्हें बौद्ध मत की शरण में ले गया। अम्बेडकर के बौद्ध धर्म की शरण में चले जाने को भले ही कोई विद्रोह के पथ पर उठा क़दम कहें, असल में यह सुधार के पथ पर उठा क़दम था, क्योंकि आज से ढ़ाई हज़ार वर्ष पहले बुद्ध ने भी वैदिक धर्म में सुधार करने के लिए ही अलग मार्ग चुना था। इतिहास की तह तक न जा पाने वाले लोग न तो बुद्ध के लक्ष्यों को समझ सकते हैं और न ही अम्बेडकर की भावना के प्रति उनके मन में कोई सम्मान उत्पन्न हो सकता है। असल में बौद्ध व जैन जैसे उदात्त मत वैदिक धर्म से ही निसृत पवित्र व सुधारात्मक धाराएँ हैं। अम्बेडकर इसी धारा के आधुनिक प्रतिनिधि हुए हैं, जिनका ठीक–ठीक मूल्यांकन किया जाना अभी शेष है। जिन अम्बेडकर ने अस्पृश्यों का उद्धार करने के पुनीत कार्य में अपना जीवन होम दिया था, उन्हें विद्रोही कहकर उनके सुधारक रूप की घोर अवहेलना की गई है। जो व्यक्ति बुद्ध के मध्यम मार्ग की ओर झुका हो, वह सुधारक ही हो सकता है, विद्रोही नहीं!

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का स्वप्न था कि स्वतंत्र भारत में अस्पृश्यता जैसी बुराई बिलकुल न हो । वे नहीं चाहते थे कि उनका भोगा हुआ यथार्थ किसी और का भी यथार्थ हो, इसलिए उन्होंने अपने समकालीन राजनेताओं से संवाद स्थापित करके अस्पृश्यता को मिटाने का तीव्र आग्रह किया। तीव्र आग्रह का यह अर्थ नहीं है कि वे भारत के जातीय तंत्र को नष्ट करके एक अराजक समाज खड़ा करना चाहते थे। अपने ही देश में, अपने ही लोगों से, अपने ही वर्ग के हित के लिए संघर्ष करना किसी भी सूरत में अराजकतापूर्ण नहीं हो सकता। फिर भी प्रतिक्रियावादी तत्वों ने अम्बेडकर के संघर्ष को इस पूर्वाग्रह के साथ प्रस्तुत किया कि उन्होंने देश में एक 'व्यवस्था–विरोधी आंदोलन' अर्थात् 'एण्टीएस्टाब्लिशमेण्ट मूवमेंट' खड़ा किया। स्वतंत्रता के पश्चात् सत्ता पर कब्ज़ा बनाए रखने के लिए देश की कुछ राजनैतिक शक्तियों ने इस 'एण्टीएस्टाब्लिशमेण्ट मूवमेंट' को अपने एजेण्डा में शामिल कर लिया। इसके फलस्वरूप उन शक्तियों के पक्ष में एक बड़ा वोट–बैंक खड़ा हो गया। स्वयं अम्बेडकर ने भी नहीं सोचा होगा कि उनके निर्मल हृदय से किए गए सुधार–आन्दोलन को स्वतंत्र्योत्तर काल में इतने व्यवस्थित रूप से सत्ता का अधिष्ठान बना दिया जाएगा। सत्ता के पुजारियों ने अम्बेडकर को 'दलितों का मसीहा' बताकर उनकी विरासत पर अधिकार कर लिया। पाठ्यपुस्तकों में भी इतिहास को एकांगी तरीक़े से प्रस्तुत किया गया। अम्बेडकर को एक सुधारक से विद्रोही बना दिया गया। उनके अनुयाइयों का जनाधार खिसक न जाए, इसलिए उन्हें बार–बार गाँधी के विरुद्ध खड़ा किया, जिसकी कालांतर में देश को बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी। कहा गया कि गाँधी उच्च वर्ग के नेता थे, जबकि अम्बेडकर निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। आजे जाकर अम्बेडकर ने जब बौद्ध मत की दीक्षा ली, तो उसे इस रूप में प्रचारित किया गया कि उन्होंने हिन्दू धर्म के प्रति विद्रोह कर दिया है। वे यह भूल गए कि अम्बेडकर ने व्यापक स्तर पर धर्म–परिवर्तन को प्रोत्साहन कभी नहीं दिया। वे यह जानते थे कि वैदिक धर्म में लोगों को अपनी असहमति जताने का पूरा अधिकार होता है। अगर यह असहमति किसी को बौद्ध या जैन मत की ओर लेकर जाती है, तो इसे विद्रोह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये मत निकले हुए तो वैदिक धर्म से ही हैं।

किसी भी दृष्टि से 'विद्रोही' नहीं

अम्बेडकर, जो कहते थे कि मुझे संस्कृत भाषा पर अत्यंत अभिमान है संस्कृत पर अभिमान करते हुए वे उस धर्म के प्रति विद्रोही कैसे हो सकते थे, जिसकी रीतियों–नीतियों का आधार ही संस्कृत में रचे हुए ग्रंथ हैं। यह सच है कि अस्पृश्यता की बुराई के चलते उन्हें अनेक बार अपमानित होना पड़ा था, लेकिन यह भी सच है कि सतारा के माध्यमिक विद्यालय के एक कट्टर सनातनी अध्यापक उनके लिए प्रतिदिन अपने घर से भोजन भी लेकर आया करते थे। अम्बेडकर कहते हैं, 'मुझे यह कहते हुए गर्व अनुभव होता है कि प्रेम की उस साग–रोटी का मिठास ही कुछ और था।' अपने सनातनी गुरु के लिए कृतज्ञता से भरे ये शब्द कहने वाले अम्बेडकर देश को अस्पृश्यता मिटाने का संदेश देने के लिए बौद्ध तो हो सकते हैं, लेकिन सनातन धर्म से बगावत नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति ने अपने नाम के साथ अपने सनातनी गुरु 'अम्बेडकर' का नाम जोड़ लिया हो, वह व्यक्ति सांवैधानिक संस्थाओं में अस्पृश्यों के लिए स्थान आरक्षित करने के लिए उग्र तो हो सकता है, लेकिन वह उन संस्थाओं का विध्वंसक कभी नहीं हो सकता। अन्याय का प्रतिकार करने की सीख भी उन्हें अपने गुरुओं कृष्णा महादेव अम्बेडकर, कृष्णा के लुस्कर, मित्र भथेना, शिवतारकर, देवराज नाइक आदि से मिली थी। इन प्रेरक शक्तियों ने जब भीमराव के व्यक्तित्त्व का निर्माण किया था, तब उनके मन में किसी के स्पृश्य अथवा अस्पृश्य होने का भाव नहीं था। भीमराव मानते थे कि कथित स्पृश्य समाज के इन लोगों ने यदि उनका साथ न दिया होता, तो वे अपने जीवन में अधिक उन्नति नहीं कर सकते थे।

'भगवद्‌गीता' का प्रभाव

1924 ई. में मुम्बई में आयोजित बहिष्कृत हितकारिणी सभा के कार्यक्रम में उन्होंने अपने मनोभाव को प्रकट करते हुए कहा था कि अस्पृश्यों का उद्धार केवल अस्पृश्यों के बल पर नहीं होगा, अपितु सकल समाज के बल पर भी होगा। इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति अम्बेडकर के व्यक्तित्त्व में ढले उदात्त धार्मिक संस्कारों के कारण ही हो सकती थी। कथित उच्च–वर्ग द्वारा उस समय 'मनुस्मृति' के प्रचलित रूप की जो व्याख्या की जा रही थी, जिसके कारण समाज स्पृश्यास्पृश्य भागों में विभाजित हो गया था। इसीलिए अम्बेडकर के मन में इस ग्रंथ के

प्रति नकार था। इस नकार को इस दृष्टि से कभी नहीं देखा जाना चाहिए कि वे मूल भारतीय दर्शन और संस्कृति के विरुद्ध थे। अम्बेडकर अपने साथियों से कहा करते थे कि हमारा आग्रह, हमारा आंदोलन सत्य के प्रति है और हमें सत्य के लिए अवश्य लड़ना चाहिए। भले ही 'मनुस्मृति' के प्रति उनके निष्कर्ष अलग रहे हों और वे मानते हों कि 'मनुस्मृति' में धर्म की धारणा नहीं, अपितु उसमें धर्म की विडम्बना है, लेकिन 'भगवद्गीता' के सम्बंध में उनके विचार पूर्णतया अलग थे। महाड़ के तालाब को अस्पृश्यों के लिए खुलवाने के लिए सत्याग्रह का चिंतन करते समय बार–बार उन्हें 'भगवद्गीता' में कृष्ण द्वारा उद्घाटित साधन और साध्य की पवित्रता के सिद्धांत का स्मरण हो आता था। 'भगवद्गीता' के संदर्भ में अम्बेडकर कहते थे कि यदि सत्य के लिए संघर्ष करने का आह्वान सबसे सुंदर रूप में कहीं किया गया है, तो वह 'भगवद्गीता' में किया गया है और धर्म की यह किताब बिना किसी भेद–भाव के, स्पृश्यास्पश्य सभी के लिए, मान्य है। अम्बेडकर का कहना था कि 'भगवद्गीता' के इस उपदेश से वे पूरी तरह सहमत हैं कि यदि उद्देश्य शुभकारी है, तो उसकी प्राप्ति के लिए किया गया कर्मयुद्ध भी शुभकारी है। यहाँ कोई आपत्ति प्रकट कर सकता है कि भीमराव 'युद्ध' की बात करते हैं, इसलिए वे साधन की पवित्रता में विश्वास नहीं करते, वे तो येन केन प्रकारेण साध्य की प्राप्ति में ही विश्वास करते हैं। यह आपत्ति वही कर सकता है, जो युद्ध को केवल शास्त्रों के प्रयोग से सम्बद्ध करके ही देखता है।

अहिंसा के पथ पर

अम्बेडकर अपने सार्वजनिक जीवन में कहीं भी हिंसा के समर्थक दिखाई नहीं देते। सब जानते हैं उनका जीवन अहिंसात्मक रीति से दमित वर्ग के लिए न्याय–प्राप्ति हेतु संघर्ष करने में बीता। इससे कोई इंकार नहीं करेगा कि अस्पृश्यता भी एक तरह की हिंसा है। इस हिंसा के विरुद्ध अम्बेडकर ने कभी हिंसा का मार्ग अपनाने का विचार नहीं किया। वे चाहते तो अस्पृश्यों का एक नया और उग्र विद्रोही समाज खड़ा कर सकते थे, जो स्पृश्यों का बहिष्कार करता और उनका दैनिन्दन जीवन मुश्किल कर देता, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने प्रेम व सौहार्द का मार्ग ही चुना। अम्बेडकर के राजनैतिक व सामाजिक जीवन में सिद्धांत और व्यवहार की दृष्टि से व्यग्रता अथवा उग्रता तो देखी जा सकती है, लेकिन यह कभी देखने में नहीं आया कि उन्होंने अपना आत्म–संयम खो दिया हो। अछूतों के मंदिर–प्रवेश के बारे में उन्होंने स्पष्ट कहा कि मंदिर हमारे सार्वजनिक स्थल हैं, जिनसे सम्पूर्ण हिंदू–समाज की भावनाएँ जुड़ी हुई हैं और यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि उनमें समाज के कुछ लोग ही प्रवेश करें। उनका कहना था कि हिंदू धर्म अछूतों और सवर्णों दोनों ही के लिए बना है, इसलिए इस धर्म के पूजा–स्थलों में प्रवेश हेतु किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं होना चाहिए।

टकराव के स्थान पर समन्वय को प्राथमिकता

मंदिरों में प्रवेश के संदर्भ में जब अस्पृश्यों और दलितों के लिए पृथक मंदिर बनाए जाने का विषय आया, तो उन्होंने इसे पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं दलितों के लिए पृथक रूप से मंदिर बनाने के किसी भी उपक्रम के सख़्त खिलाफ़ हूँ और जो मंदिर पूर्व में बने हुए हैं, उनमें ही अछूतों के प्रवेश को उचित मानता हूँ। अतः कहा जा सकता है कि अम्बेडकर हृदय की अतल गहराई से हिंदू–समाज का एकत्व चाहते थे। वे मानते थे कि हिंदू–दर्शन विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। उन्हें इस बात की मर्मांतक पीड़ा थी कि हिंदू–समाज में यह दोष आ गया है कि इंसानों का एक वर्ग दूसरे वर्ग के इंसानों का स्पर्श भी न करे। उनका मत था कि हिंदू अपनी मानवीय सद्भावना के लिए सारे विश्व में जाने जाते हैं और प्राणियों के लिए उनकी आस्था अद्भुत है, यहाँ तक कि कुछ लोग तो विषैले सर्पों को भी नहीं मारते। अम्बेडकर को इस बात का दुःख था कि जिस दर्शन में आत्मा की सर्वव्यापकता का सिद्धांत प्रचलित है, उसे मानने वाले कुछ मनुष्य अन्य मनुष्यों के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते हैं। एक ही धर्म के अनुयाइयों में मन, वचन और कर्म की दृष्टि से उपजे भेद को वे समाप्त कर देना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने मुम्बई में 'समाज समता संघ' की स्थापना की। इस संघ के बैनर तले हिंदू समाज में समरसता स्थापित करने के लिए अनेक गतिविधियाँ सम्पन्न हुईं। मार्च, 1928 में जब पाँच सौ महारों का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करवाया गया, तो अम्बेडकर ने स्वयं उपस्थित रहकर आंदोलनकारियों का उत्साहवर्द्धन किया। इसी क्रम में अप्रैल, 1929 में रत्नागिरि ज़िले में भी उनकी उपस्थिति में 'दलित जाति परिषद्' के सौजन्य से, उनके अनन्य सनातनी साथी देवराव नाइक के नेतृत्व में, वैदिक मंत्रोच्चार के साथ सहस्रों अछूतों का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। अछूतों का यज्ञोपवीत संस्कार करवाने जैसे क्रांतिकारी कार्य करके भी भीमराव ने अभिमान नहीं किया और कथित ऊँची जातियों के प्रति सद्भावना बनाए रखी। देश के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् उनके पास यह कहने का विकल्प था कि संविधान में अछूतों के लिए जो कल्याणकारी प्रावधान हैं, वे उन्होंने ही सवर्णों से लड़कर सम्मिलित करवाए हैं, पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने अपने अनुयाइयों से कहा कि स्वतंत्रता तो मिल गई है, किंतु अब हमारे समक्ष राष्ट्र–निर्माण का महान् प्रश्न उपस्थित है। राष्ट्र–निर्माण हेतु स्पृश्यास्पृश्य दोनों को मिलकर चलना होगा। उन्होंने कहा कि संविधान में हमें सवर्णों के बराबर का दरज़ा मिला है। यह केवल मेरे करने से नहीं हुआ है। संविधान निर्मात्री सभा के अधिकांश सदस्य सवर्ण थे, फिर भी उन्होंने हमें बराबरी का दरज़ा देकर अत्यंत सदाशयता का परिचय दिया है। अब हमें मिलकर आगे बढ़ना है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अम्बेडकर सारी उम्र स्पृश्यों से, अस्पृश्यों के पक्ष में लड़ते रहे, लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि वे अपने अनुयाइयों से कहते रहे कि यह न मानो कि सारा दोष सवर्णों का ही है। वे आज नहीं तो कल हमारे अधिकार हमें दे देंगे, परंतु यदि हमने अपनी बस्तियों में अपेक्षित सुधार नहीं किए, तो परिवर्तन नहीं होगा। हम यदि अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेजेंगे और स्त्री–शिक्षा पर ध्यान नहीं देंगे, तो हमारा उद्धार नहीं हो सकेगा। केरल की एक सभा में उन्होंने दमित समाज

की महिलाओं से कहा कि तुम्हारे गाँव का ब्राह्मण चाहे कितना ही निर्धन क्यों न हो, वह अपने बच्चों को पढ़ाता अवश्य है। इसीलिए उसका लड़का पढ़ते–पढ़ते डिप्टी कलक्टर बन जाता है। तुम्हें भी अपने बच्चों को पढ़ने भेजना चाहिए। इस प्रसंग से अनुमान हो जाता है कि अम्बेडकर दमित वर्ग की शिक्षा के प्रति कितने गम्भीर थे और अपने समाज के लोगों को प्रेरित करने के लिए ब्राह्मण वर्ग की प्रशंसा तक कर देते थे। कोई ब्राह्मण जाति में जन्म ले चुका है, यही अम्बेडकर के विरोध का कारण नहीं था। जनवरी 1946 में सोलापुर में दिए गए एक भाषण में उन्होंने अपने ब्राह्मण साथी डॉ. मुले का अत्यधिक आदर के साथ स्मरण करते हुए कहा था कि उनकी सहायता से ही मैंने बीस वर्ष पूर्व सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया था। महाड़ सत्याग्रह–आंदोलन के समय उन्होंने बड़ी दृढ़ता से साथियों की इस माँग को अस्वीकार कर दिया था कि आंदोलन से ब्राह्मणों को पृथक कर दिया जाए। उनका कहना था कि मेरा ब्राह्मण जाति से कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं है। मेरा संघर्ष मनुष्यों की दूसरों को हीन समझने की प्रवृत्ति से है। मुझे भेद–भाव करने वाले ग़ैर ब्राह्मणों की अपेक्षा भेद–भाव न करने वाले ब्राह्मण अधिक प्रिय हैं। एक बार किसी संदर्भ में उन्होंने किसी विश्वविद्यालयी शिक्षक को, जिसे उन्होंने ही नियुक्त किया था, कहा था कि यदि मैं ब्राह्मण–विरोधी होता, तो तुम यहाँ नौकरी नहीं कर रहे होते।

अस्पृश्यों की अलग पहचान क्यों

अम्बेडकर तो स्पृश्यों से अलग अस्पृश्यों की पहचान से सहमति नहीं रखते थे। यही कारण था कि अस्पृश्यों के लिए जब 'हरिजन' शब्द प्रयुक्त करने का विषय आया, तो उन्होंने इसका पूरी शक्ति से प्रतिकार किया। वे नहीं चाहते थे कि अस्पृश्यों को अलग पहचान देकर उन्हें शेष समाज से अलग होने का आभास करवाया जाए। 21 सितम्बर 1928 को 'बहिष्कृत भारत' के सम्पादकीय में 'हिंदुओं का धर्म–शास्त्र' शीर्षक से भारत के प्राचीन धार्मिक स्वरूप का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि प्राचीनकाल के वैभवशाली राष्ट्रों मिस्र, सीरिया, रोम, यूनानादि की गणना में भारत का हिंदू राष्ट्र भी सम्मिलित था। उन्होंने कहा कि सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से कोई भी देश भारत के समतुल्य नहीं है, लेकिन वे यह भी कहते थे कि देश के धर्म–शास्त्र भेद–भावमूलक हैं। असल में इस देश के धर्म–शास्त्र मूलतः जातीय भेद उत्पन्न करने वाले नहीं थे। वे अभेद का संदेश ही देते थे, लेकिन किसी राष्ट्र के सहस्रों वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास में देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार विकार न आएँ, यह सम्भव नहीं है। हर काल में धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक अधिष्ठानों पर कब्ज़ा जमाने के लिए एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा होता है, जो धन और बुद्धि के बल से समर्थ होता है। समाज में समरसता बनाए रखने वाले सीधे, सरल लोग उसके दबाव में आ जाते हैं। इस विपथगामी, किंतु समर्थ वर्ग को इस बात की समझ नहीं होती कि लम्हों द्वारा की गई ख़ताओं की सज़ा सदियाँ भुगतती हैं। अम्बेडकर का विक्षोभ उस समर्थ वर्ग के प्रति था, जिसने ख़ताएँ कीं। उनका विक्षोभ पूरे हिंदू समाज के प्रति नहीं था। वे चाहते थे कि इस देश के हिंदू एक खण्डित समाज में न रहे। उनका स्वप्न था कि भारत के हर नागरिक की एक ही पहचान हो, उसका एक ही परिचय हो। 1928 में महाड़ में एक सभा की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा था कि यदि हम सभी हिंदुओं को एक जाति के रूप में संगठित करने में सफल होते हैं, तो हम भारत–राष्ट्र और मुख्यतः हिंदू–समाज की बहुत बड़ी सेवा करेंगे। इस कथन का महत्त्व इस रूप में समझा जा सकता है कि 'इण्डियन नेशनल हेराल्ड' जैसे बड़े अख़बार ने इसे उद्धृत किया। अम्बेडकर के विषय में बहुत अधिक जानकारी न रखने वाले अनेक मित्र उनके इस मत को सकल हिंदू–समाज के प्रति विद्रोह प्रकट करने के रूप में देखते हैं कि उन्होंने जुलाई, 1936 में मुम्बई प्रांत की कौंसिल में प्रस्तुत किए गए उस सरकारी बिल का विरोध किया, जिसमें अस्पृश्यों को सम्बोधित करने के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करने की बात कही गई थी। इस विरोध को हिंदू–विरोध बताने वाले मित्रों को यह समझना चाहिए कि जो व्यक्ति सम्पूर्ण हिंदू–समाज को एक जाति के रूप में देखना चाहता हो, क्या वह अस्पृश्यों के लिए पृथक रूप से कोई संज्ञा प्रयुक्त किए जाने के प्रस्ताव का समर्थन कैसे करेगे? अम्बेडकर का स्पष्ट विचार था कि इसमें किसी को कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि मैं अपने देश को प्रेम करता हूँ और मेरे व्यक्ति व मेरे देश में यदि टकराव होगा, तो मैं देश को ही प्राथमिकता दूँगा।

अटूट राष्ट्र–प्रेम

मार्च, 1952 में मुम्बई में एक आयोजन के दौरान उन्होंने पूरे बल से उद्घोष किया कि मैंने कभी राष्ट्र–द्रोह नहीं किया। मेरे दिल में राष्ट्र का हित ही सर्वोपरि रहा है। उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं उग्र स्वभाव का व्यक्ति हूँ और सत्ताधीशों से मेरा टकराव होता रहता है, फिर भी मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि अपनी विदेश–यात्राओं में मैं भारत की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने दूँगा। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा कि राष्ट्रहित के विषय में तो मैं गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर महात्मा गाँधी से भी दो सौ मील आगे था। राष्ट्र के प्रति इस तरह का अद्भुत समर्पण जो व्यक्ति रखता हो, उस व्यक्ति को भारतीय राजनीति की विडम्बनाओं ने जिस तरह से एक वर्ग–विशेष का प्रतिनिधि बनाकर प्रस्तुत कर दिया है, यह हमारे लिए बहुत लज्जाजनक स्थिति है। अम्बेडकर जैसा व्यक्ति कभी किसी वोट–बैंक का अधिष्ठाता नहीं हो सकता। उस व्यक्ति को इस राष्ट्र के महान् नायक का दरज़ा ही मिलना चाहिए। नायक वह नहीं होता, जो सामाजिक क्रांति के नाम पर कुछ लोगों को साथ लेकर प्रचलित तंत्र को पूर्णतया नष्ट–भ्रष्ट कर देने का स्वप्न देखे, अपितु नायक वह होता है, जो धैर्यपूर्वक अपने समाज की समस्याओं को समझे और उनका युक्तियुक्त समाधान प्रस्तुत करे। अम्बेडकर ने अपने सम्पूर्ण समर्पण–भाव से अत्यंत शीलता और धीरता के साथ देश और समाज की सेवा की है, इसलिए हम उन्हें सच्चा नायक कहेंगे। भारत माँ के महान् सपूत डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर की सहन–शक्ति के समक्ष कौन नतमस्तक नहीं होगा, जिसे अछूत होने के कारण न्यायाधीश जैसा दिव्य पद त्यागना पड़ा था। अम्बेडकर

की विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर बड़ौदा के शासक सयाजीराव ने उन्हें विधि में डॉक्टरेट करने के लिए अपने ख़र्चे पर विदेश भेजा था। विदेश से लौटने पर सयाजीराव ने उन्हें अपने राज्य में न्यायाधीश भी नियुक्त किया था, किंतु धर्म की मनमानी व्याख्या करने वाले समाज के कथित भाग्य–नियन्ताओं ने उन्हें ठीक तरह से अपने उत्तरदायित्व की पालना नहीं करने दी। अम्बेडकर के स्थान पर कोई और होता, तो वह अपने अपमान को सहन नहीं करता। अधिक नहीं, तो वह इस देश से पलायन अवश्य कर जाता। अम्बेडकर ने पलायन का कायरतापूर्ण मार्ग नहीं चुना।

निष्कर्ष

अम्बेडकर जानते थे कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में यदि अस्पृश्यता की घटनाएँ घटती रहेंगी, तो परिणाम अच्छे नहीं होंगे। अम्बेडकर नहीं चाहते थे कि आक्रोशाधीन होकर कोई अस्पृश्य हाथ में बंदूक थाम ले, व्यथा के अंध–कूप में गिरकर कोई अछूत अपनी जीवन–कथा समाप्त कर ले या अपमान से आहत होकर कोई दलित जन्म–भूमि से ही पलायन कर जाए। एक महामना यह कैसे देख सकता था कि स्वतंत्रता के बाद उसका देश खण्डित नज़र आए। यही कारण था कि उन्होंने अछूतों के आक्रोश, उनकी व्यथा और उनकी आशंकाओं को एक रचनात्मक आंदोलन में रूपांतरित कर दिया। यह एक दुरूह कार्य था। इसे सम्पन्न करने के लिए एक विद्रोही नहीं, बल्कि एक सुधारक के हिमालयी संकल्प, अपार ऊर्जा और असीम धैर्य की आवश्यकता थी। यह उनके तप का फल ही है कि भारत में आज स्पृश्यास्पृश्य के नाम पर होने वाला भेद–भाव पूरी तरह मिटता दिखाई दे रहा है और पूरी दुनिया का ध्यान इस देश की महान् सांस्कृतिक निधि से कुछ न कुछ सीखने में लगा हुआ है। आज समाज–विज्ञान के शोधकर्त्ताओं की ओर अत्यंत आशाजनक दृष्टि से देख रहा है कि अम्बेडकर जैसे गुदड़ी के लाल का सही–सही मूल्यांकन हो और उन्हें एक समाज–सुधारक ही माना जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *'अछूत मतवाद के सच – गाँधी और अम्बेडकर', तिवारी विवेकानंद, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.*
2. *'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट', डॉ. अम्बेडकर बी. आर., थैचर एंड कम्पनी, मुम्बई, 1937.*
3. *'डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एंड मिशन', कीर धनंजय, पॉपुलर प्रकाशन, मुम्बई, 1995.*
4- *'डॉ. बी. आर. अम्बेडकर्स डीफरेंट आस्पेक्ट्स', http:@@www-ambedkar-org.*
5. *'डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर – रायटिंग्स एंड स्पीचेज : ए रैडी रेफरेंस मैनुअल ऑफ 17 वोल्यूम्स', अहीर डी. सी., बी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन दिल्ली, 2007.*
6. *'बाबासाहेब अम्बेडकर –हिज लाइफ एंड वर्क', शहारे एम. एल., राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद् (एन.सी.ई. आर.टी), नई दिल्ली, 1988.*
7. *'द अनटचेबल्स, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर – एक चिंतन', लिमये मधु, आत्माराम एंड संस, रचना प्रकाशन, मुम्बई, 1986.*
8. *'बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर – व्यक्तित्व एवं कृतित्व', जाटव डी. आर., समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993*
9. *'बुक्स बाइ डॉ. अम्बेडकर',* http://www.ambedkar.org
10. *'युगपुरुष अम्बेडकर' (उपन्यास), भटनागर राजेंद्र मोहन, राजपाल एंड संज, दिल्ली, 2005.*
11. *'सम्पूर्ण गाँधी वांग्मय – खण्ड 33', प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1994.*
12. *'सलेक्टेड वर्क्स ऑफ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर' (पीडीएफ), https://www.drambedkarbooks.files.wordpress.com*
13. *'सोर्स मटेरिअल ऑन डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर एंड द मूवमेण्ट ऑफ अनटचेबल्स दृ वोल्यूम 1', बी. जी. कुंते (सम्पादक), डिपार्टमेंट ऑफ़ एजुकेशन, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र, मुम्बई, 1982.*
14. *'हू वर द शूद्राज', डॉ. बी. आर. अम्बेडकर', थैचर एंड कम्पनी, मुम्बई, 1946.*